## संस्थाए

# ओरछा का एक अखाड़ा

मध्ययुग के ग्रंथों के 'प्रारंभ' की अपनी एक ऐतिहासिक धज है। पहले गणेश और सरस्वती-वंदना, फिर आश्रयदाता और कविवंश-वर्णन। शायद आश्रयदाता को प्रसन्न करने या अपनी पहचान स्थापित करने के लिए। लेकिन इतना ही काफी नहीं है, कभी-कभी कोई कवि अपने ग्रंथ में जाने या अनजाने किसी घटना या वस्तु का ऐसा वर्णन अथवा संकेत छोड़ जाता है, जो इस ग्रंथ के लिए ही नहीं, वरन् इस युग के इतिहास के लिए कीमती धरोहर साबित होता है। इसका एक उदाहरण है-आचार्य केशव की 'कविप्रिया', जिसके शुरू में ही ओरछा के एक अखाड़े का वर्णन २१ छंदों में है। कविवंश वर्णन के पहले। अखिर इस अखाड़े को इतना महत्त्व देने की क्या जरूरत थी ? और वह भी केशव जैसे महाकवि के लिए, जो ओरछा-नरेश महाराज रामसाहि और ओरछा के राजकाज का सारा भार अपने कंधों पर रखनेवाले महाराज इन्द्रजीत के गुरु थे। सवाल उठता है कि ओरछे के इस अखाड़े में कौन-सा ऐसा रहस्य था, जो केशव जैसे कवि के मन पर पूरी तरह छाया रहा।

### अखाड़े की कहानी

बुंदेलखंड के अखाड़ों की एक लम्बी परम्परा रही है, लेकिन मध्ययुग में और खासतौर से १६ वीं शती में अखाड़े का अर्थ पूरी तरह बतल चुका था। ग्वालियर के तीन कवियों द्वारा रचित प्रेमाख्यान 'छिताईकथा' (१५१६-२६ ई.) में अखाड़ों के संबंध में दो संकेत स्पष्ट हैं-पहला यह कि अखाड़ों में नटों और पातुरों की भागीदारी प्रमुख थी और दूसरा यह कि अखाड़े के लिए अनेक स्तम्भों पर खुले भवन निर्मित किये जाने लगे थे। इन तथ्यों की पुष्टि आचार्य केशव की 'कविप्रिया' में भी मिलती है, लेकिन उसमें वर्णित अखाड़ा बाद के विकसित रूप का चित्र खड़ा करता है।

'कविप्रिया' (१६०१ ई.) के अखाड़े में छः पातुरों का वर्णन है। सभी एक-दूसरे से बढ़कर, अपनी अलग-अलग निजता लिये हुए। नवरंगराइ में हावों-भावों की लयकारी कल्पना इतनी गतिमय थी कि उसके नृत्य में दर्शक का मन झूले का आनंद पाता था। वह नौ रसों के नौ रंगों में हर समय नयापन देने में माहिर थी, जबकि अपने विचित्र नैनों से बोलनेवाली और सुर के जादू से सम्मोहित करनेवाली नैनविचित्रा भैरव और गौरी की उस्ताद। नागर रागों में नागरी और तान-तरंगों की आगरी तानतरंग की कला जहाँ तनमन को बेधती थी, वहाँ रंगराय की मृदंग और मुरज की थापें अनेक गुणियों को मन्त्रमुग्ध कर देती थीं। सत्याराय की चातुरी का कोई जवाब नहीं और प्रवीणराय की तुलना में रमा, शिवा और शारदा के उपमान भी लाजवाब हैं। सभी नाचने, गाने-बजाने और पढ़ने में प्रवीण, किन्तु कविता रचने में केवल प्रवीणराय आगे। 'नाचत गावत पढ़त सब सबै बजावत बीन' में 'पढ़त' का अर्थ है-काव्य-पाठ। इन संकेतों से जाहिर है कि यह अखाड़ा नृत्य, गायन, वादन और काव्य-कलाओं का अनोखा संगम था। साथ ही इतना महत्त्वपूर्ण कि आचार्य केशव को काव्यशास्त्र के ग्रंथ 'कविप्रिया' में स्थान देना पड़ा।

### प्रवीणराय का महल या अखाड़े का मन्दित ?

ओरछा के राजभवन और जहाँगीर महल की दाहिनी बाजू की तलहटी में एक दोमंजिला भवन खड़ा है, जिसे प्रवीणराय

© इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केन्द्र पहला संस्करणः १९९५

All rights reserved. No part of this book may be reproduced or transmitted in any form or by any means, electronic or mechanical, including photocopy, recording or by any information storage and retrieval system, without prior permission in writing.

का महल कहा जाता है, लेकिन है वह महाराज इन्द्रजीत द्वारा निर्मित अखाड़ा। नीचे का बृहत् कक्ष खुला हुआ है और उसके मेहराबदार चौड़े दरवाजे से ऐसा लगता है कि सार्वजनिक अखाड़े के लिए उसका प्रयोग होता था। आगे के दरवाजों के सामने चबूतरे पर भी दर्शकों के बैठने की जगह थी और चबूतरे से सटा हुआ सामने एक लम्बा-चौड़ा बाग था, जो आज भी अपनी पुरानी केलिकथा को आँचर में छिपाये लेटा है। इस बाग का वर्णन कविप्रिया के सप्तम प्रभाव के छंद १५ में किया गया है, जिसमें विविध वृक्षों और बेलों के नाम भी बताये गए हैं।

अखाड़े की ऊपरी मंजील भी खुली हुई है। सामने की तरफ पाँच गोल खम्भों पर पाँच दरवाजे हैं और आगे छत। बृहत्कक्ष और छत, दोनों विशिष्ट दर्शकों के लिए थीं और बृहत् कक्ष के दोनों ओर बने छोटे-छोटे कक्ष साज-सिंगार के लिए थे। यह मंजिल महाराज इन्द्रजीत और राज्य के कुछ विशिष्ट मंत्रियों या सामंतों के उपभोग में आती थी। बृहत् कक्ष में तीन-चार भित्ति-चित्र भी लिखे हैं, जिनमें नर्तकी की नृत्य-भंगिमाओं से भी अखाड़े का आभास मिल जाता है। सबसे नीचे तहखाने जैसी मंजिल में भी कलाओं के प्रदर्शन के लिए स्थान था, जो आश्रयदाता इन्द्रजीत के लिए था। अखाड़े की बगल में और बाग के अंत में भवन के भाग या भवनों में पातुरों की 'रहस' (निवास) थी। बहरहाल, यह भवन मध्यकालीन अखाड़े के मंदिर का एक सुंदर चित्र प्रसुतुत करता है।

## अखाड़े की मानसिकता

केशव के समय अखाड़े की चेतना मन के भीतरी कोने तक पैठ चुकी थी। स्वयं महाकवि ने अभिभूत होकर कविप्रिया का एक छंद रचा था जिसमें नैनों के क्रिया-व्यापारों में अखाड़े का रूपक बाँधा था

काछे सितासित काछनी केसव, पातुर ज्यों पुतरीन बिचारो।

कोटि कटाच्छ चलें गति भेद, नचावत नायक नेह न न्यारो।

बाजत है मृदु हास मृदंग सुदीपति दीपन को उजयारो।

देखत हों हरि देख तुम्हें यह होत है आँखिन हू में अखारो।। १३-२०।।

इससे जाहिर है कि पातुर का विविध गतियों के साथ नृत्य अखाड़े की पहिचान बन गई थी। लेकिन सिर्फ इतना ही नहीं, यह अखाड़ा तो जहाँ नायिका की आँखों में हो रहा है, वहाँ नायक की प्रेमभरी आँखों में भी। मतलब यह है कि दोनों में एक प्रतियोगिता अखाड़े का प्राण बन गई थी और इसी वजह से कलाकारों एवं कवियों में पारस्परिक स्पर्द्धा फैल गई थी। हर प्रतियोगी कलात्मक चमत्कारों से अखाड़ा जीतने को तत्पर और एक द्वन्द्वमयी मानसिकता। नृत्य, संगीत और काव्य में श्रेष्ठता के दाँव-पेंचों की शुरूआत और निर्णायकों द्वारा नियमों की दुहाई देकर फैसला करने की प्रवृत्ति।

## अखाड़े की संस्कृति

'कविप्रिया' के एक दोहे ने अखाड़े की संस्कृति को ऊँचाई पर प्रतिष्ठित होने की गवाही दी है-'करो अखारो राज को सासन सब संगीत। ताको देखत इन्द्र ज्यों इन्द्रजीत रनजीत।।' स्पष्ट है कि केशव के समय अखाड़े की संस्कृति एक आदर्श या मूल्य बन गई थी। इन्द्रजीत ने 'राज' को अखाड़ा बनाकर एक सांस्कृतिक क्रांति की थी, जिसका अर्थ था-

© इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केन्द्र पहला संस्करणः १९९५

All rights reserved. No part of this book may be reproduced or transmitted in any form or by any means, electronic or mechanical, including photocopy, recording or by any information storage and retrieval system, without prior permission in writing.

ललित कलाओं का संरक्षण, विकास और चिंतन। कलाओं का ऐसा फैलाव कि सारा राज्य अखाड़ेमय हो गया और ऐसी हवा चली कि सारा वातावरण कलागंधों से भर गया। राजनीति और कला का यह समझौता आज भी एक सोच के लिए मजबूर करता है ।

अखाड़े की संस्कृति का जहाँ एक उद्देश्य था कला का उत्कर्ष, वहाँ दूसरा था लोकरंजन। मनोविनोद के महत्त्वपूर्ण साधन थे-अखाड़े। चाहे कला के पारखी उसकी कला की बारीकियों को समझकर आनन्द लें, चाहे आम आदमी उसके किसी चमत्कार से मनोरंजन करे। वीरों और सैनिकों के लिए अखाड़े उनके पीछे-पीछे चलते थे-युद्ध की थकन मिटाने और नई ताजगी देने। इसलिए उनमें श्रृंगारिकता और विलासिता पनपना स्वाभाविक था। खुले में तम्बुओं के साये पातुरों के नृत्य से मचल उठते और खानपान में मस्त योद्धा थिरकनों में खोकर बहने लगते। यहाँ तक कि पातुर को भी जबरन उनकी इच्छाएँ पूरी करनी पड़तीं। इस माहौल में हर कला श्रृंगारिक होते गए।

एक विशेष बात यह भी थी कि अधिकांश अखाड़े राज्य के आश्रित थे। 'कविप्रिया' में वर्णित अखाड़ा महाराज इन्द्रजीत का था और उसका पोषण राज्य की तरफ से होता था। स्वतंत्र अखाड़े भी थे। लोकमानस भी राजसी अखाड़ों को ज्यादा पसंद करता था। राजा या सामन्त के सामने कलाकार भी अपना पलड़ा भारी करने के लिए यदि राजसी संस्कृति के चित्रों को अपनी कला में सजाने लगे, तो उसका क्या दोष ! इसी प्रवृत्ति से ही कलाओं में राजसी संस्कृति और उसके समवायों का प्रवेश हुआ। दूसरे, अखाड़ों में कलाकारों की होड़ ने चमत्कारों को महत्त्व दिया, जिसके फलस्वरूप कला की साधना और सिद्धि से जुड़े चमत्कार धीरे-धीरे दिखावटी होते गए ।

ऊपर के तथ्यों से इतना तो स्पष्ट है कि अखाड़े की संस्कृति में प्रतिद्वंद्विता और चमत्कार, श्रृंगारिकता और विलासिता, राजसी ऐश्वर्य और भोगमूलकता, शिष्टता और शास्त्रीयता आदि प्रवृत्तियों का अद्‌भुत सामंजस्य था, जिसने उसे अपनी अलग अस्मिता दी। लेकिन इन अखाड़ों की एक और भी पहचान थी कि वे किसी भी धर्म या संप्रदाय के अंकुश से दूर थे, इसलिए उनमें किसी भी तरह का धार्मिक बंधन नहीं था। और इसी कारण यह संस्कृति भी सिर्फ कला के मूल्य को मान्यता देती थी। इससे सिद्ध है कि ये अखाड़े मध्य युग की संस्कृति के जीते-जागते संस्थान थे ।

## रीतिकाव्य के उत्स का सवाल

एक तरफ रीतिकाव्य के प्रवर्तक आचार्य केशव की 'कविप्रिया' अपनी कथा खुद कहती है, तो दूसरी तरफ विद्वान् उसकी जरा भी पखाह न कर रीतिकाव्य के उत्सव के संबंध में कुछ और निर्णय लेते हैं। डॉ. भगीरथ मिश्र ने 'हिन्दी रीति-साहित्य' में रीतिकाव्य के विकास के लिए मुगल शासन के परिणामस्वरूप जीवन में व्याप्त शान्ति और समृद्धि, कला और संस्कृति के महत्त्व, विलासिता की भावना एवं भाषा-साहित्य के जिम्मेदार माना है। लेकिन विचित्र बात तो यह है कि रीतिकाव्य के प्रवर्तक आचार्य केशव के प्रदेश या यों कहें कि रीतिकाव्य के उत्सदेश-ओरछा पर १६वीं और १७वीं शती में मुगलों के कई आक्रमण हुए। यहाँ लम्बी सूची देने से विस्तार का भय है, पर बुंदेलखंड का इतिहास गवाह है कि केशव के काव्य-काल में ओरछा मुगल बादशाह अकबर के आक्रमणों और घरेलू संघर्षों में सुलगता रहा। इतना ही नहीं, बुंदेलखंड में १९वीं शती तक निरंतर युद्ध होते रहे, फिर यहाँ सबसे अधिक रीतिग्रंथ या रीतिकाव्य क्यों रचा गया। ऐसे संघर्षकाल में ओरछा के आचार्य केशव ने रीतिकाव्य का प्रवर्तन कैसे किया ? यदि केशव को प्रवर्तक माना जाता है, तो क्या यह कहा जा सकता है कि रीतिकाव्य का उद्‌भव और विकास मुगल शासन के परिणामस्वरूप जीवन में व्याप्त शान्ति और समृद्धि आदि से हुआ था ?

हिन्दी साहित्य के इतिहासकार और विद्वानों ने यह भी माना है कि मुगल सम्राट अकबर ने सबसे पहले अपने दरबार में हिंदी कवियों को आश्रय दिया था और आगे चलकर अन्य राजाओं ने इस प्रवृत्ति का अनुसरण किया था। लेकिन ओरछा

© इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केन्द्र पहला संस्करणः १९९५

All rights reserved. No part of this book may be reproduced or transmitted in any form or by any means, electronic or mechanical, including photocopy, recording or by any information storage and retrieval system, without prior permission in writing.

के राजाओं में यह परम्परा अकबर से पहले थी और उसके साक्ष्य उपस्थित किये जा सकते हैं। इसी तरह विद्वानों की यह मान्यता भी सही नहीं है कि अकबर के पूर्व भाषाकवि का राज-दरबार में उतना सम्मान नहीं था, जितना कि संस्कृत कवि का। प्रमाण के लिए लोककवि जगनिक, विष्णुदास, गुलाब, खेमराज तथा ओरछानरेश भारतीचन्द तथा मधुकरशाहि के आश्रित अनेक कवि गिनाए जा सकते हैं। इन तर्कों को यहाँ देने का प्रयोजन सिर्फ यह है कि बुंदेलखंड में कला और साहित्य को राजकीय संरक्षण बहुत पहले से प्राप्त था। अगर ऐसा न होता, तो अखाड़ों की यह संस्कृति भी न पनपती।

## अखाड़ों से रीतिकाव्य का उद्‌भव

दरअसल रीतिचेतना के सही स्रोत की खोज के लिए रीतिकाव्य के प्रवर्तक के मूल प्रेरणाबिंदु को समझना जरूरी है। 'कविप्रिया' में केशव ने ओरछे का वर्णन करते हुए अंत में लिखा है-'सविता जू कविता दई जाकहँ परम प्रकास। ताके कारज कविप्रिया कीनीं केसवदास।।' स्पष्ट है कि कविप्रिया की रचना ओरछे के अखाड़े की प्रसिद्ध पातुर प्रावीणराय के लिए हुई थी और उद्देश्य था-'समझै बाला बालकन बरनन पंथ अगाध। कविप्रिया केसव करी छमियो कबि अपराध' अर्थात् कवि या काव्य-शिक्षा कविता के बालकों के लिए थी। सवाल उठता है कि प्रवीणराय के लिए क्यों ? असल में, ओरछा का यह अखाड़ा केवल नृत्य और संगीत का नहीं, वरन् काव्य का भी था और उसमें जब काव्य-प्रतियोगिता होती थी, तब निर्णायक आचार्य के रूप में केशव ही आसीन होते थे। निर्णय की उस भूमिका में उन्हें नियम और प्रमाण भी बताने पड़ते थे, और यह मनोभूमि रीतिग्रंथ की रचना के लिए काफी थी। दूसरे, प्रवीणराय जहाँ अखाड़े की एक पातुर (पात्री) थी, वहाँ महाराज इन्द्रजीत की प्रिय भी थी और इस नाते उसने कवि से काव्य के नियमों के संबंध में चर्चा भी की थी। इस स्थिति में 'ताके कारज' कविप्रिया लिखी गई थी।

अखाड़े की द्वन्द्वमूलक मानसिकता कवियों को होड़ के लिए मजबूर करती है। आजकल भी फड़ों में (खासतौर से फागों और सैरों के) दो दलों के बीच ऐसी होड़ होती है कि निर्णायक को फैसला करना मुश्किल लगता है और बहस के किसी भी बिन्दु पर उसे प्रमाण देने पड़ते हैं। इस तरह उसे काव्य के सिद्धांतों के सागर में अवगाहन करना पड़ता है। इस पिरस्थिति में केशव के मन में भी काव्यरीति का चिंतन बार-बार उठा था और संस्कृत काव्यशास्त्र के उदाहरण देते हुए भाषा के काव्यशास्त्र की कमी खटकी थी। फलस्वरूप रीति काव्य का जन्म हुआ और एक अखाड़े में बजी बधाइयाँ सारे देश में गूँज उठीं।

इ स भूमिका की नींव भी बहुत गहरी थी। केशव उस धराने के थे, जिसमें सभी शास्त्रों और पुराणों के पंडित थे। तूसरे, वे महाराजा इन्द्रजीत के गुरु थे (गुरु कर मानो इंद्रजित) और ओरछा के राजगुरु। पंडित और राजगुरु ने काव्यगुरु को प्रेरित किया था और अखाड़ें ने उस प्रेरण को साकार बनाया था। केशव की काव्य-अस्मिता मध्ययुग के अंधेरे में जब अपना मार्ग तलाश रही थी, तब इन अखाड़ों ने उसे एक नई रोशनी दी और हिंदी की रीतिचेतना का प्रादुर्भाव हुआ। इससे सिद्ध है कि बुंदेलखंड में रीतिकाव्य-धारा इन्हीं मध्ययुगीन अखाड़ों से उद्‌गमित होकर पूरे हिंदी-प्रदेश को आप्लावित कर गई।

## ओरछा का वह अखाड़ा

अब एक अदना-सा सवाल खड़ा होता है कि क्या ये अखाड़े केवल बुंदेलखंड में ही थे, जिन्होंने रीतिकाव्य को जन्म दिया ? यह अहं पालना उचित नहीं, ये अखाड़े बहुत से जनपदों में और पूरे देश में रहे होंगे और खोज करने पर ही उनके बारे में कुछ कहा जा सकता है। बहरहाल, इन्हीं अखाड़ों से मध्ययुग के फड़ों और गोष्ठियों का विकास हुआ था, जिनका

© इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केन्द्र पहला संस्करणः १९९५

All rights reserved. No part of this book may be reproduced or transmitted in any form or by any means, electronic or mechanical, including photocopy, recording or by any information storage and retrieval system, without prior permission in writing.

उल्लेख मध्ययुग के इतिहास में मिलता है। दूसरा प्रश्न है कि केशव की प्रेरणा में कितने अखाड़े काम कर रहे थे। इसका अनुमान कठिन है, लेकिन यह निश्चित है कि केशव द्वारा 'कविप्रिया' में वर्णित ओरछा के अखाड़े ने ही रीतिकाव्य के प्रसव की पीड़ा सही थी, भले ही कवि ने दूसरे अखाड़ों का आनन्द भोगा हो।

© इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केन्द्र पहला संस्करणः १९९५

All rights reserved. No part of this book may be reproduced or transmitted in any form or by any means, electronic or mechanical, including photocopy, recording or by any information storage and retrieval system, without prior permission in writing.